ISSN 2231-5063 Impact Factor : 4.6052 (UIF) Volume - 6 | Issue - 2 | August - 2016

GRT Golden Research Thoughts

कर्तव्य बोध-दृष्टि एवं चेतना
(नरेश मेहता के खण्ड-काव्यों के सन्दर्भ में)

प्रा.डॉ. मिरगणे अनुराधा जनार्धन
हिन्दी विभाग अध्यक्षा , आदर्श महाविद्यालय उमरगा.

मानव जीवन की सम्पूर्ण यात्रा का प्रधान अर्थ कर्म ही है। स्वार्थ-बुद्धि से किया गया कर्म मानव को बन्धन में डालता है तथा निस्वार्थ-बुद्धि से किया गया कर्म मानव को बन्धन-मुक्त करता है तथा परम-सुख का कारण बनता है। जीवन में सुख-दुख, यश-अपयश, लाभ-हानि, धनागम एवं धन-नाश की विभिन्न परिस्थितियों से हमें गुज़रना पड़ता है, किन्तु उन विषम परिस्थितयों में हमें गीता सम्मत कर्म-बोध होना आवश्यक है तभी हम दु:ख में भी सुख का रास्ता प्रशस्त कर लें हैं अन्यथा कर्म विमुख होकर विषम परिस्थितियों को और अधिक जटिल बना लेते हैं। ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित महाकवि नरेश मेहता ने अपने खण्ड-काव्यों में भी राम, लक्ष्मण, हनुमान, जटायु, दशरथ एवं सीता के माध्यम से विषम परिस्थितियों में भी गीता-सम्मत कर्तव्य-बोध का संदेश दिया है जो आज भी प्रामीमात्र के लिए उपादेय है।

ऋग्वेद में 'ऋत' की मनोरम कल्पना है। 'ऋत' का अर्थ है- 'सत्य' या 'अविनाशी सत्ता'। सभी कर्मों का कारण ऋत है और कर्म की स्थिति इसी सत्ता के कारण हैं। वैदिक आर्यों का प्रधान धार्मिक कृत्य यज्ञ था। वैदिक काल में कर्म का अर्थ यज्ञ ही समझा जाता था। यज्ञ का अभिप्राय: है- 'देवतोद्देशन द्रव्य-त्याग' अर्थात् किसी देवता विशेष के लिए हविश्य या द्रव्य का समर्पण करना। परन्तु गीता में यज्ञ का विस्तृत अर्थ दिया गया है- "नि:स्वार्थ बुद्धि से किए गए परमात्मा की ओर ले जाने वाले समस्त कर्मों को यज्ञ कहते हैं।" गीता में कहा गया है कि "जीवन-यात्रा का प्रधान अर्थ कर्म ही है। एक क्षण के लिए भी कोई आदमी बिना कर्म के नहीं रह सकता और कर्म चक्र से कोई भी भग नहीं सकता; कर्म, कर्त्ता का बन्धन में डालता है फलाकांक्षा या आसक्ति से किए गए कर्म के फल का तो भोगना पड़ता है किन्तु निष्काम-कर्म से कर्ता बन्धन मुक्त हो सकता है। कार्य का इस प्रकार कुशलता से सम्पादन कार्य-योग है। कर्म सनयास से बढ़कर है।"[1] कर्म को योग में परिवर्तित करने के लिए तीन सोपानों की आवश्यकता होती है- 1. फलाकांक्षा का वर्णन 2. कर्तव्य के अभिमान का परित्याग 3. ईश्वरार्पण। गीता का उपदेश है कि- "मनुष्य का अधिकार कर्म करने में है फल की आकांक्षा से कर्म कभी नहीं करना ाहिए तथा अकर्म (कर्म न करने) की इच्छा नहीं होनी चाहिए।"

फल की आकांक्षा न रखना तथा कर्मों का सम्पादन करना, यही गीता का सम्मत कर्म या कर्तवय बोध मेहता जी के काव्य में अन्तर्निहित है। 'संषय की एक रात' में संशय ग्रस्त राम को आश्वस्त करते हुए लक्ष्मण किस प्रकार उन्हें कर्तव्य-बोध दे रहे हैं-

"नहीं है हम, केवल परिचालित यंत्र
किसी अदृश्य, अन्धे हाथों के
हमारा स्वत्व कर्म है।"[3]

लक्ष्मण फिर आगे कहते हैं- हम निरन्तर चलते रहने में विश्वास करते हैं चाहें परिणाम अच्छा हो या बुरा हो, हमारा स्वत्व कर्म है किन्तु-

"यह असंभव है, कर्म और वर्चस्व को
छीन सके कोई भी जब तक हम जीवित है।"[4]

महता जी ने लक्ष्मण के इस कथन से गीता के निष्कार्म-कर्म का समर्थन किया है। लक्ष्मण को अपने पौरुष पर विश्वास है इसलिए वे ब्रह्मलेख की अपेक्षा कर्म की चुनौती स्वीकार करना चाहते हैं। लक्ष्मण जिस कर्म का समर्थन कर रहा है वह तात्कालिक युद्ध है। प्रकारान्तर से उनके लिए युद्ध ही कर्म है। इस सन्दर्भ के माध्यम से मेहता जी ने बोध दिया कि हमें अपने तत्कालिक कर्म और कर्त्तव्य से कभी विमुख नहीं होना चाहिए और उसकी चुनौती स्वीकार करनी चाहिए।

इसी प्रकार 'महाप्रस्थान' के मिथक में 'निष्काम-कर्म' का समर्थन युधिष्ठिर ने भी किया है। वे मानते हैं कि फलाकांक्षा से रहित कर्ता की भूमि निर्वेद की भूमि होती है। इसी निर्वेद की भूमि पर खड़े होकर युधिष्ठिर भीम से कहते हैं-

"अब युद्ध कर्त्तव्य हो गया, तो अनासक्त होकर वह भी किया, इसलिए उन दिनों वे स्मृतियाँ
मुझे भी तो स्मरण आती हैं, पर सालती नहीं, आच्छादित नहीं करती।"

अनासक्त कर्त्ता के लिए जय-पराजय, जीवन-मरण सभी समान होते हैं। महाभारत के युद्ध की परिणति पर विचार करते हुए युधिष्ठिर भीम से कहते हैं-

"भीम! दोनों ही पक्षों में जैसे मैं ही था
मैंने ही वह युद्ध जीता भी
और पराजित भी मैं ही हुआ, दुर्योधन बनकर
आज मैं ही, इस विजय का पश्चाताप करते हुए, हिम में गल रहा हूँ।"[6]

'संशय की एक रात' में दशरथ की छाया और विभीषण का कर्म-बोध वैदिक युग के दैवीय विधान ऋत पर आधारित है। यह बोध कर्म -चक्र की अनिवार्यता के परिप्रेक्ष्य में कर्म करने की विवशता का प्रतिपादन करता है। युद्ध के प्रति राम को प्रेरित करने के लिए प्रयुक्त उनका कर्म-बोध प्रारब्ध को प्रमुख मानता है। मृतात्मा दशरथ ने युद्ध के प्रति या अपने कर्त्तव्य के प्रति राम की उदासीनता देखकर उनसे पूछा-

"क्यों! किसलिए यह अनासक्ति
कर्म के प्रति का-पुरूषता नहीं है यह? "[7]

तात्कालिक कर्म का बोध देते हुए दशरथ सैद्धान्तिक रूप से राम से कहते हैं-

"यहाँ सब कर्त्तव्य है
जयाजय, धर्माधर्म भी नहीं
केवल नाम है।"[8]

इस मिथक का कर्म-बोध है कि नियम के बृहद् विराट्-चक्र की गति भी कर्म है, और व्यक्ति उसके निकट केव कर्म का क्षण हैं। इस प्रकार यहाँ ऋत या सत्य को भी कर्म ही स्वीकार किया है। दशरथ की छाया कर्म का प्रतिपादन युद्ध के परिप्रेक्ष्य में करती है और इसीलिए दशरथ-छाया राम को कितने सुन्दर शब्दों में कर्त्तव्य बोध देती है-

"पुत्र मेरे, संशय या शंका नहीं
कर्म ही उत्तर है, यश जिसकी छाया है
उस कर्म को करो।"[9]

विभीषण भी राम को परामर्थ देते हुए कर्म और कर्त्तवय को ही महत्त्व देते हैं। उनके यहाँ संशय या तर्क को स्थान नहीं। वे राम से कहते हैं-

"कोई भी काम किया जाए, चाहे
सम्प्रति वह युद्ध ही हो
वह काम ही होगा, संशय या तर्क नहीं।"[10]

अन्त में राम भी युद्ध को अपना कर्म या कर्त्तव्य समझकर उसके प्रति अपनी सहमति व्यक्त करते हुए कहते हैं-

"ओ मेरे विवेक! मुझसे प्रश्न मत करो
प्रश्नों की वेला अब नहीं रही, कर्म करो।"[11]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मेहता जी ने अपने काव्य के माध्यम से कर्म या कर्त्तव्य-बोध का सुन्दर उपदेश दिया है जो गीता के कर्म-बोध का कर्तव्यबोध से काफी साम्य रखता है।

संदर्भ -

1. गीता- 5/7
2. गीता- 2/47
3. संशय की एक रात- पृ. 18
4. संशय की एक रात- पृ. 20
5. संशय की एक रात- पृ. 100
6. महाप्रस्थान- पृ. 99
7. संशय की एक रात- पृ. 56
8. संशय की एक रात- पृ. 57
9. संशय की एक रात- पृ. 67
10. संशय की एक रात- पृ. 92
11. संशय की एक रात- पृ. 106